Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

आधुनिक रंगमंच में बदलते नाट्य प्रतिमान–संस्कृत के सन्दर्भ में

डॉ0 (श्रीमती) मधु सत्यदेव
एसोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग,
दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर,उत्तर प्रदेश, भारत

शोध आलेख सार– साहित्य की सम्पूर्ण विधाएँ मानव मन को उल्लसित करती हुई उसके मनोरंजन एवं उत्कर्ष में समान रूप से उपादेय हैं, किन्तु नाट्य में जीवन और समाज के विविध रूपों एवं भावों की यथार्थ एवं सजीव अभिव्यक्ति अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा उत्कृष्ट होती हैं। आधुनिक नाटककार के रूपकों में संवाद एवं भाषा रंग मंच को सफल एवं प्रभावशाली बनाने में समर्थ है। नृत्य नाटिकाओं में विद्युत प्रकाश को गतिशील करके विभिन्न भावों को सरलता से सम्प्रेषित किया जाना भी सम्भव हो गया है। इस प्रकार नाटक केवल अभिनय नहीं साधना है, भोग नहीं योग है, प्रदर्शन नहीं अपितु ब्रह्मानन्द सहोदर है।

मुख्य शब्द– आधुनिक, रंगमंच, नाट्य प्रतिमान, संस्कृत, साहित्य, नाटक,नाट्यशास्त्र।

साहित्य की सम्पूर्ण विधाएँ मानव मन को उल्लसित करती हुई उसके मनोरंजन एवं उत्कर्ष में समान रूप से उपादेय हैं, किन्तु नाट्य में जीवन और समाज के विविध रूपों एवं भावों की यथार्थ एवं सजीव अभिव्यक्ति अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा उत्कृष्ट होती हैं। नाट्य को अन्य साहित्यिक रूपों में विविक्त करने वाला मूल तत्त्व उसका दृश्यत्व है।[1] नाट्य का दृश्य–श्रव्यत्व साधारणीकरण द्वारा रसास्वादन का प्रबल कारक है। वस्तुतः नाट्य में काव्य के प्रायः सभी तत्त्व न्यूनाधिक रूप में पाये जाते हैं। संगीत, अभिनय आदि तत्त्व साहित्य की अन्य विधाओं की उपेक्षा पृथक् और विशिष्ट है।[2] नाटक कथा साहित्य का एक ऐसा रूप है, जिसे 'दृश्य काव्य' कहा जाता है, क्योंकि नाटक नाट्यगृह में अभिनेताओं के माध्यम से रंगमंच पर प्रस्तुत होता है, और प्रेक्षक समुदाय को एक साथ प्रभावित करता है। इस समय नाटक जीवन से प्रत्येक सम्बन्ध स्थापित करता है। दृश्य काव्य में कल्पना पर अधिक बल नहीं देना पड़ता है दर्शक को यही प्रतीत होता है कि वह वास्तविकता को देख रहे हैं। यहाँ मूर्त का प्रभाव होता है।[3] नाट्यकार में जो भाषा की कमी रहती है, वह नटों की भाव भंगिमा से पूरी हो जाती है।[4] इसीलिये नाट्य में

प्रभावोत्पादकता अधिक होती है। दृश्यत्व के कारण नाट्य को रूप तथा नटादि पर रामादि पात्रों की अवस्था का आरोप होने से रूपक भी कहते हैं।[5] नाटक वाचिक, आंगिक, सात्त्विक व आहार्य अभिनय के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है जिससे आंगिक अभिनय का अधिकाधिक महत्व है।[6] नाट्य भिन्न–भिन्न रूचि रखने वाले व्यक्तियों के लिये समान रूप से आनन्ददायी है।[7] वस्तुतः नाट्य जन कला है। अपने सामूहिक प्रदर्शन, सामूहिक आस्वादन अनेक कलाओं के समन्वय तथा शिक्षित–अशिक्षित सभी स्तर के लोगों के लिये आस्वाद्य होने के कारण सर्वजन सामान्य होने से सार्ववर्णिक है।[8]

भारतीय परम्परा के अनुसार विभिन्न संस्कृतियों का सौन्दर्य हमें यहाँ के साहित्य में दृष्टिगोचर होता है जहाँ जीवन का प्रत्येक पक्ष प्रगति के नवीन अध्याय लिख रहा है वहाँ आधुनिक नाटकों में नाट्य तत्त्वों की नवीन सम्भावनाओं को कैसे इन्कार किया जा सकता है। वर्तमान काल में हमारा नाट्य साहित्य युगानुरूप होने के साथ–साथ रंगमंचीय दृष्टि से भी बहुत समृद्ध हो गया है। प्राचीन नाटकों में कवि द्वारा किये गये वर्णनों के माध्यम से प्रेक्षक अपने समक्ष प्रस्तुत दृश्य की कल्पना कर लेता था, अर्थात् किसी भी स्थिति की संकल्पना प्रेक्षकों की प्रतिभा पर ही आधारित थी। विभिन्न प्रकार के रंग–निर्देश ही इन दृश्यों की संजीवनी होते थे यथा–अभिज्ञान शाकुन्तलम् में राजा दृष्यन्त जिस मृग का पीछा करते हैं वह सूत्रधार के निर्देश से अनुभव गम्य है। इसमें मृग का गुड़–मुड़ कर पीछा करते रथ की ओर देखना, पिछले भाग से सिमट कर अगले भाग को लम्बा करना, हाँफने के कारण खुले मुख से अर्धचर्वित टुकड़ों को मार्ग पर बिखेरते जाना, लम्बी–लम्बी चालें भरने से भूमि पर पैर बहुत कम रखना आदि क्रिया सर्वथा स्वाभाविक है और प्रत्यक्षवत् दिखायी दे रही है।[9] इसी प्रकार रंग मंच पर प्रियम्वदा एवं अनुसूर्या का पुष्प चयन वस्तुतः पुष्प चुनने का अनुकरण मात्र है।[10] एक कुशल नायक एवं नायिका इन समस्त भावों को कुशलता पूर्वक व्यक्त कर देते हैं पर इसके लिए एक आदर्श प्रेक्षक में अभिनेताओं द्वारा अनुकृत पात्रों के मनोभावों तथा अनुभूतियों को स्वकीय बना सकने की योग्यता के साथ तत्काल आत्मसात् करने की शक्ति एवं उत्कृष्ट निर्णायक शक्ति का होना अपेक्षित है। तभी वह वाह्य आंगिक चेष्टाओं से यथा अश्रु, हास, रोमांच, आक्रोश, हर्ष, भय जुगुप्ता आदि भावों की अभिव्यक्ति कर सकता है। इस प्रकार प्राचीन नाटकों में नाटककार प्रेक्षागृह, अभिनेता नाटक की साज–सज्जा एवं दृश्य प्रेक्षक आदि प्रमुख नाट्य तत्त्वों का प्रयोग भरतमुनि के नाट्य शास्त्र के नियमों के अन्तर्गत ही करते रहे। उस समय दृश्य जगत् की प्राण वत्ता के लिए अथक परिश्रम नहीं करना पड़ा क्योंकि उनका उद्देश्य मात्र रंगमंचीय अभिनय ही नहीं अपितु तत्कालीन नाट्य रचनाओं को उत्कर्ष प्रदान करने वाली विविध कलाओं नृत्य, गीत वाद्य को भी उत्कर्ष प्रदान करना था। परन्तु आधुनिक (अर्वाचीन) संस्कृत नाट्य रचनाकारों ने प्राचीन नाट्यशास्त्र सम्बन्धित नियमों को स्वीकार करते हुए भारतीय समाज की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं को दृष्टिगत रखते हुए नवीन नाट्य तत्त्वों की सर्जना की। आज नाटक का अभिप्राय रूपक का एक अंग नहीं अपितु उसमें एकांकी प्रहसन, भाण डिम्ब, वीथिका, नुक्कड़ आदि समस्त विधाएँ रेडियो रूपक, छाया नाटक आदि समस्त विधाएँ अनुस्यूत है।

संस्कृत नाट्य क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रान्ति लाने वाले रचनाकारों की एक विस्तृत श्रृंखला है जिनमें अभिराज राजेन्द्र मिश्र, राधा बल्लभ त्रिपाठी, देवर्षि कलानाथ शास्त्री, हरिदत्त शर्मा, वनमाला भवालकर नलिनी शुक्ला, लीला

राव, रमा चौधरी, कमला रत्नम्, देवकी मेनन, डा0 वीणा पाणि पाटनी, ब्रह्मचारिणी बेलादेवी, डा0 रत्नमयी दीक्षित आदि अनेक रचनाकार सम्मिलित है, जिन्होंने समसामयिक विषयों को लेकर तथा पौराणिक इत्तवृत्तों का कायाकल्प करके संस्कृत प्रसार–प्रचार का कार्य किया। वस्तुतः इनकी रचनाओं में प्राचीन और अर्वाचीन नाट्य तत्त्वों की सुगन्ध व्यापत है। यद्यपि इन नाट्यकारों ने रूपक की समग्रता पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की परन्तु भारतीय मनीषियों की प्रज्ञा परिष्कृति के कारण समय–समय पर रंगमंच एवं तकनीक की दृष्टि से भी युगानुरूप परिवर्तन होते रहे। शिल्प एवं कथ्य विधान को ध्यान में रखकर ध्वनि–प्रसारण की प्रमुखता पर एकाग्र होकर जिन नाटकों का प्रणयन किया गया वे 'रेडियो रूपक' के रूप में प्रचलित हुए। आकाशवाणी के प्रसारण एवं तकनीक दृष्टि से इन्हें सर्वाधिक प्रभावशाली स्वीकार किया गया है। जहाँ तक वर्तमान परिवेश की बात करें तो रेडियो रूपक (ध्वनि नाट्य) और नृत्य नाटिकाएँ ही अधिकांशतः प्रचलित है। इसके साथ ही संगीत नाटिकाओं के प्रति भी आधुनिक नाटककारों की अभिरूचि परिलक्षित होती है, जो जनसामान्य पर कम समय में अधिक प्रभावकारी सिद्ध होती है इसमें वनमाला भालकर की राम वन गमनम्, सीता हरणम्, पार्वती परमेश्वरीया है, डा0 नलिनी शुक्ला का संगीत रूपक पार्वती तपश्चर्या एवं राधानुनयः प्रधान है जिसे विविध छन्दों, तालों एवं रागों में रूपायित किया गया है। इसमें कत्थक नृत्य की स्वर भंगिमाएँ वर्णित हैं।

श्रीमती लीला राव दयाल द्वारा नितान्त आधुनिक शैली में 24 नाटकों का प्रणयन किया गया, इसमें कतिपय रूपक एकांकी है और कुछ संगीत नाट्य। इसमें ध्वनि निर्देशों की प्रचुरता होने के कारण रेडियो के माध्यम से अत्यन्त सफलता के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है। इसी प्रकार श्रीमती कला रत्नम् के ''गणयंछाग'' एवं विवेकानन्द स्मृतिः एवं नचिकेतोयम संवादम् रेडियो रूपक की श्रेणी में आते है। इनके समस्त रूपकों का प्रसारण दिल्ली दूरदर्शन एवं आकाशवाणी पर संस्कृत नृत्य–वाटिकाओं के माध्यम से हुआ है। अभिराज का 'अभीष्टमुपायनम्' दहेज की समस्या का आश्रित रेडियो रूपक है यह अपने समस्त मानदण्डों को पूर्ण करता है। दहेज जैसी कुप्रथा के समाधान स्वरूप गृह स्वामिनी का यह कथन ''तव सद्गुणा एव में अतुलनीयं यौतकम्'' इस नाटक को सुखान्त की ओर ले जाता है।[11] और दहेज समस्या का समाधान भी प्रस्तुत करता है। डा0 राधा वल्लभ त्रिपाठी का 'मेध सन्देश' ध्वनि नाट्य है।[12] इसमें मेघ गर्जन, वर्षा, वायु की तीव्रता का नाद सम्पूर्ण भावों की अभिव्यक्ति करता है। केशव चन्द्र दास का 'समानी'[13] नाटक धारावाहिक के रूप में सफल प्रयोग है इसके अन्तर्गत सम्पूर्ण नाटक के रंग मंचयीय निर्देशों को ध्यान में रखकर श्रव्य एवं दृश्य रूप में लिखे गये है जो पात्रों की संवादों के साथ अभिनायात्मक दृष्टि से भी उत्कृष्ट है। दूरदर्शन पर प्रयोग की दृष्टि से ये सफल नाटक कहे जा सकते हैं। रेडियो एवं नाटक पर किये जाने वाले सफल नाट्यों प्रयोगों ने फिल्म जगत् में प्रवेश किया। हरिदत्त शर्मा का नाटक 'आक्रन्दनम्' नाट्य संकलन के सम्पूर्ण एकांकी 'रेडियो रूपक' हैं जिनका प्रसारण इलाहाबाद आकाशवाणी
से हो चुका है। स्त्री शोषण के विरोध में अबलावलम्' एकांकी का उद्घोष ''वयं नार्यः राष्ट्रे जागृयम्'' नारी के जीवन की ओर लक्षित करता है।[14] देवर्षि कलानाथ शास्त्री की संस्कृत नाट्य 'वल्लरी' ध्वनि नाट्य का विलक्षण उदाहरण है उन्होंने अपना मत व्यक्त करते हुए नाट्य वल्लरी में लिखा है – ''इन रूपकों में प्रसारण तकनीक दृष्टि से जो

सूच्य लिखे जाते हैं उन्हें संस्कृत में उल्लिखित किया गया है साथ ही उन्हें अति संक्षिप्त दिया गया है। यद्यपि सामान्य पाठक के लिए उनकी विशेष अर्थवत्ता नहीं है मंचन या प्रसारण में ही उनका विशेष उपयोग है।[15]

ध्वनि रूपकों के निर्माण में रचनाकार का यही लक्ष्य होना चाहिए कि जनसमुदाय को उनकी भाषा भाव, भाव शैली अत्यन्त सरल एवं बोधगम्य हो जिसके श्रवण–मात्र से श्रोता उसे समझ लें क्योंकि मुद्रित नाटक में अर्थ स्पष्ट न होने पर पुनः उस नाटक के अध्ययन की सरलता होती है परन्तु ध्वनि रूपक में ध्वनि का सम्यक् प्रयोग ही शाब्दिक वातावरण का सृजन करता है। इस 'नाट्य वल्लरी' एकांकी के माध्यम से कोई न कोई सन्देश अवश्य दिया गया है, जिससे नवीन पीढ़ी इनसे प्रेरणा ग्रहण कर आदर्शोन्मुख व्यवहार की ओर प्रेरित हो सके। इसमें प्रायः समस्त नाटक प्राचीन आख्यानों का नवीनतम रूप है केवल एक मात्र ''धर्मस्य तत्त्व निहितं गुहायाम्'' ही वर्तमान समस्याओं पर आधारित नाटक है।[16]

नाटकों के क्षेत्र में समस्या पूर्ति जैसे विषय को लेकर अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने ''पंच सी न मी जैसा रोचक नाटक लिखा।[17] पहले भी बेताल पच्चीसी जैसे नाटक लिख जाते थे जो बालक वर्ग के लिये रोचक थे उसी शैली पर आधारित यह नाटक है जिसमें प्रेक्षक अन्त तक इस सूक्ति का अर्थ खोजता रहता है और नाट्य की समाप्ति तक उसका मन उसमें लगा रहता है यह बौद्धिक व्यायाम का भी प्रतीक है। 'वाणीघटक मेलनम्'' में एक नया प्रयोग पात्रों के नामकरण को लेकर किया गया है। इसके समस्त पात्रों के नाम व्याकरण के सूत्र वाक्यों के आधार पर रखे गये हैं। जैसे–छात्रों के नाम, कृदन्त, यवन्त, कर्मवाच्य, एक वचन आदि। इसमें व्याकरण के सूत्रों का मानवीकरण करके हास–परिहास में गम्भीर तत्त्वों का ज्ञान दिया गया है।[18] देहली परिवेदनम् भी नाट्य प्रोयाग की नवीन विधा के अन्तर्गत आता है क्योंकि उसमें दिल्ली की चेतना एक वृद्धा रूप में दर्शायी गयी है। वह नादिरशाह का कत्लेआम और दारा शिकोह की यातनाओं से क्षत्–विक्षत दिल्ली उस वृद्धा के रूप में विलाप करती है। यही है अचेतन का चेतन मन में आरोपण।[19]

इसी परम्परा में पूर्वोन्मेष विधि (Flash back System) को मानकर लिखा गया नाटक ''एकसदं विप्राः बहुधा वदन्ति'[20] भी नवीन कला का परिचायक है प्रमद्वरा नाटिका की कथा वस्तु भले ही प्राचीन है, पर उसका निर्देशन मंच व्यवस्था तकनीक की दृष्टि से नितान्त आधुनिक है। इसके अतिरिक्त अर्वाचीन नाट्य मंचन में अनेक नवीन प्रविष्टियों का आगमन हुआ है जैसे प्रकाश का प्रभाव ध्वनि का प्रभाव, वातावरण संयोजन के लिए रंगमंच की व्यवस्था, पर्दे पर छाया दृश्यों का आयोजन, मुखौटे में विविधता। इन समस्त नवप्रयोगों के द्वारा नाट्य के स्वरूप में मंचीय दृष्टि से अत्यधिक परिवर्तन आया है।[21] कुछ नाटक 'लीला नाट्य शैली में लिखे गये हैं जहाँ पर वेशभूषा आदि की सज्जा नहीं होती है वह मूकाभिनय के माध्यम से अपनी बात, पहचान प्रस्तुत कर देते है जैसे इन्द्रजालम् एवं कामला[22] में मदारी एवं जमूरे के पारस्परिक संवाद सम्पूर्ण समाज का चित्र उतार देते है। इसमें वेशभूषा के अप्रभावी होने पर भी प्रस्तुति का आकर्षण प्रेक्षक को बाँधे रखता है ये नाटक नुक्कड़ नाटक भी कहे जा सकते है जिसमें अलग–अलग घटनाओं को पात्रों के रूप पिरोकर एक प्रतीकात्मक रूपक का सृजन करता है। 'कामला' नाटक में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार को दिग्दर्शक के संवादों द्वारा भीड़ भरे जन मार्ग में प्रस्तुत किया जा

सकता है। कामला के अन्तिम नाटक में दहेज प्रथा, भ्रूण–हत्या जैसे विषयों को उठाया है। हर्षदेव माधव सत्य कहते है–यत्र नार्यस्तु दहन्ते रमन्ते तत्र राक्षसाः।।[23]

राधा वल्लभ त्रिपाठी ने 'प्रेक्षणसप्तकम्' की रचना की जिसके अधिकांशतः एकांकी रंगमंच पर खेले गये है। अपनी नर्मालाप शैली में इसकी रचना की जिसमें हास्य के साथ–साथ सरल व्यंग्य–विनोद की निर्झरिणी प्रवाहित हुई है। उनका 'मशकधानी' नाटक मंच की दृष्टि से सर्वाधिक सफल कहा जा सकता है क्योंकि थके हारे मानव मन को अभिनेताओं का 'कॉमेडी शो' विश्रान्ति देता है।[24] इसी क्रम में 'गणेशपूनजम्' को नुक्कड़ शैली की सफल प्रस्तुति कहा जा सकता है। यह एकांकी समाज की कलुषित मनोवृत्ति को प्रेक्षकों तक पहुँचाता है।[25] इस प्रकार संस्कृत नाटकों की अनवरत् प्रवाहमान वह नाट्य शास्त्र उनकी जीवन्तता एवं युगबोध का द्योतक है। इसी क्रम में 'गणेशपूजनम्' को नुक्कड़ शैली की सफल प्रस्तुति कहा जा सकता है जिसमें गणेशपूजन के चन्द्र के नाम पर धंधा किया जाता है। स्तुति पूजन के नाम पर अश्लील संगीत, फिल्में दिखाने के वादे किये जाते हैं, इस प्रकार यह एकांकी समाज को कलुषित मनोवृत्ति को प्रेक्षकों तक पहुँचाता है।

अर्वाचीन नाट्य रचनाओं में संवाद तत्त्व एवं भाषा के पर्यालोचन से प्रतीत होता है कि इनके रूपकों में संवाद प्राचीन रूपकों की उपेक्षा सरल एवं लोक बोध्य है। छोटे–छोटे चुस्त संवाद अपनी क्रियाशीलता, यथार्थता एवं सहजता से पाठकों एवं दर्शकों के हृदय में स्पर्श करते है। वस्तुतः आधुनिक नाटककार के रूपकों में संवाद एवं भाषा रंग मंच को सफल एवं प्रभावशाली बनाने में समर्थ है।

इस प्रकार रूपक रचनाएँ व्यावसायिक मंचों पर तो खेली जा कती है अव्यावसायिक मंचों पर यथा–विद्यालय, महाविद्यालय के मंचों, उद्यानों तथा नगर चतुष्पथों पर भी खेली जा सकती है।

इस प्रयोगधर्मिता का कारण न केवल हमारी सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन का होना है, अपितु हमारी जीवन शैली का बदलाव भी है। आज घण्टों तक चलने वाले नाटकों का स्थान छोटे–छोटे एकांकी ले रहे है। क्योंकि श्रोता एवं दर्शकों पर न तो बड़े नाटकों को देखने का समय है और न रूचि। अतः कम समय में अधिक आनन्द प्राप्त करने के मनोविज्ञान ने ही संगीत एवं नृत्य–नाटकाओं, रेडियो–रूपक, ध्वनि नाट्य एकांकी जैसे लघु नाटयों में अपनी रूचि व्यक्त की है। उदाहरणार्थ–कलानाथ शास्त्री जी का 'नाट्यशास्त्रावतार'' नाटक 25 मि0 में अभिनीत किया जा सकता है। ''प्रेक्षण सप्तकम्'' के समस्त नाटक 30 से 40 मिनट में कल्पवृक्ष के समस्त एकांकी 15 से 20 मि0 में अभिराज के अधिकांश नाटक 25 से 40 मि0 के मध्य प्रस्तुत किये जा सकते है। ध्वनि एवं दृश्य परिवर्तन द्वारा वर्षों एवं माह का अन्तराल प्रेक्षकों को सरलता से सम्प्रेषित किया जा सकता है। वस्तुतः नाट्य परम्परा में बदलते हुए प्रयोग विज्ञान से स्पष्ट है कि आधुनिक–ज्ञान–विज्ञान के प्रकाश में रंगमंच पर नाटक को प्रस्तुत करने की नवीन शैलियों का विकास हुआ है। सिनेमा के आविष्कार एवं एकांकी नाटक के बढ़ते प्रभाव ने रंगमंच विषयक नवीन प्रयोगों को जन्म दिया है। हत्या, मृत्यु, युद्ध विषयक दृश्यों को लेकर, प्राचीन नाटकों में जो प्रतिबन्ध थे अब शिथिल हो गये है। रंगमंच की आधुनिक सज्जा, ध्वनि–प्रकाश इतनी सशक्त है कि दर्शक को दृश्य कल्पना की आवश्यकता ही नहीं है। वर्षा कालीन दृश्य को आकाशीय विद्युत और ध्वनि साम्य से समीव कर दिया जाता है। नृत्य नाटिकाओं में विद्युत प्रकाश को गतिशील करके विभिन्न भावों को सरलता से सम्प्रेषित किया जाना भी सम्भव हो गया है। इस प्रकार नाटक केवल अभिनय नहीं साधना है, भोग नहीं योग है, प्रदर्शन नहीं अपितु

ब्रह्मानन्द सहोदर है। अब वह दिन दूर नहीं जब विकसित होती नाट्य कला में भरतमुनि का घोष, शिव का ताण्डव और पार्वती का लास्य फिर एक बार थिरक उठोगा – क्योंकि

वक्त का रूकना यहाँ सम्भव नहीं,
छोड़ दे यह काफिला सम्भव नहीं,
मोड़ तक पहुँचते, नये हैं, मोड़ फिर
एक सबका हो जहाँ सम्भव नहीं''[26]

सन्दर्भः–

1. दृश्यश्रव्यत्वभेदेनं पुनः काव्यं द्विघामतम्।
   दृश्यं तत्राभिनेयम्, तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।।
   साहित्य दर्पण, 6/1
2. नाट्य निर्णय, पृ0 108
3. काव्य के रूप, पृ0 16
4. रंग दर्शन, पृ0 187
5. क–रूपयन्ते, अभिनीयन्ते इति रूपाणि नाटकादीनि।
   नाट्य दर्पण, पृ0 23
   ख–दशरूपकम् 1/7
6. This physical action is absolutely demanded on the stage and it will be found that those plays which most frankly embrace the physical action are likely to be most popular.
   - The Theory of Drama, P. 72
7. मालविकाग्निमित्रम्, 1/4
8. नाट्यशास्त्रम् 1/11
9. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/7
10. अभ्ज्ञिानशाकुन्तलम्, 1/23, 4/4–5
11. रूप रूद्रीयम्, पृ0 8
12. प्रेक्षण सप्तकम्, 200, 21
13. दूर्वा, पृ0 32/4614
14. आक्रन्दनम्, पृ0 74
15. संस्कृत नाट्य वल्लरी भूमिका पृ0 45
16. संस्कृत नाट्य वल्लरी, पृ0 52–63
17. नाट्य सप्तपदम्, पृ0 27–71
18. नाट्य सप्तपदम् – 52–58
19. नाट्य सप्तपदम् – 108–117
20. प्रमद्वरा पृ0 6, 7, 4, 51
21. मृत्युरयं कस्तूरीमृगोऽस्ति – हर्षदेव माधव, पृ0–3
22. –तदैव–पृ0–19–25
23. कल्पवृक्षः पृ0 30, 31, 32
24. प्रेक्षण सप्तकम्, पृ0 48–51
25. प्रेक्षण सप्तकम्, पृ0 54–58
26. कालोऽस्मि, पृ0–17 (हर्षदेव माधव)